कपूर चंद गोधा

बनाम

मीर नवाब हिमायतअली खान आज़मजाह

(एस.के. दास, एम. हिदायतुल्ला, और जे.सी. शाह, जे.जे.)

अनुबंध - तीसरे व्यक्ति से प्रदर्शन स्वीकार करने वाला प्रांत दावे की पूर्ण संतुष्टि में - यदि वचनदाता पर शेष के लिए मुकदमा कर सकता है--भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 (1872 का 9), धाराएँ 41, 63, दृष्टांत (सी)।

जनवरी 1937 में एक एम एंड कंपनी ने प्रतिवादी बरार के राजकुमार को लगभग 13 लाख मूल्य के आभूषण बेचे और सुपुर्द किए। राजकुमार ने लिखित रूप में आभूषण की खरीद और उसकी कीमत की बात स्वीकार की और देय ऋणों के संबंध में विभिन्न पावती पारित की और अंतिम ऐसी स्वीकृतियां रुपये 27,79,000 की राशि के लिए की गई थीं। अप्रैल 1948 में अपीलकर्ताओं ने अपना बिल प्रस्तुत किया और जनवरी 1949 में उनको सूचित किया गया कि निज़ाम ने बिल पारित कर दिया है। फरवरी, 1949 में जब हैदराबाद सेना के अधीन था, सैन्य गवर्नर द्वारा बरार के राजकुमार और उसके छोटे भाई के सभी ऋणों की जांच करने के लिए एक समिति की स्थापना की गई थी। अपीलकर्ताओं के दावे पर समिति द्वारा विचार किया गया जिसने सिफारिश की, कि अपीलकर्ताओं को उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि हेतु 20 लाख रुपये की राशि का भुगतान किया जाना चाहिए। अपीलकर्ताओं को दो किस्तों में रुपये 20 लाख का भुगतान किया गया। अपीलकर्ताओं ने एक प्राप्ति पारित करने का प्रयास किया जब उन्हें दूसरी किस्त प्राप्त हुई, बरार के राजकुमार से वचन-पत्र के तहत शेष राशि वसूल

करने के उनके अधिकार को सुरक्षित करने के लिए। संबंधित अधिकारियों ने उक्त रसीद पर भुगतान करने से इंकार कर दिया। इसके बाद अपीलकर्ताओं ने पिछले सभी वचन-पत्रों को डिस्चार्ज कर दिया और उनमें से प्रत्येक पर पूरी राशि की संतुष्टि दर्ज की गई। अपीलकर्ता ने इसके बाद वचन पत्र पर उनके शेष बकाया पैसों की वसूली के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा दायर किया। विचारण अदालत ने इस आधार पर मुकदमे पर फैसला सुनाया कि जब वादी को महालेखाकार, हैदराबाद से दूसरा चेक प्राप्त हुआ तो सहमति और संतुष्टि नहीं थी। प्रतिवादी की अपील पर अपीलीय अदालत ने डिक्री को यह कह कर खारिज कर दिया कि अपीलकर्ताओं ने उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि के अनुरूप 20 लाख रुपए की राशि स्वीकार की और विधिवत रूप से पूर्ण संतुष्टि का समर्थन करते हुए वचन पत्र को डिस्चार्ज किया।

अपीलकर्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिये गए प्रमाण पत्र पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील के लिए आये।

अभिनिर्धारित, कि जब भुगतान उस शर्त पर स्वीकार किया जाता है जिस पर इसे पेश किया जाता है, वह प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए यह कहने के लिए खुला नहीं है, वास्तव में या कानून में, कि उन्होनें पैसे स्वीकार किये लेकिन शर्त नहीं।

एक वचनगृहीता जो तीसरे व्यक्ति से वादे के निष्पादन को स्वीकार करता है, बाद में इसे वादा करने वाले के विरुद्ध लागू नहीं कर सकता।

वर्तमान मामले में अपीलकर्ताओं को जब दूसरी किस्त प्राप्त हुई तो उन्होनें पूर्ण डिस्चार्ज दिया था; और जब उन्होंने अपने दावे की पूर्ण संतुष्टि में धन स्वीकार किया, वे बकाया के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा करने के हकदार नहीं थे।

इतरोक्ति: जब कोई क़ानून स्पष्ट रूप से मामले को कवर करता है तो बमुश्किल किसी निर्णय का उल्लेख करना आवश्यक होता है।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 60 में से सिविल अपील संख्या 52

बंबई उच्च न्यायालय के अपील संख्या 25/1957 में निर्णय और डिक्री दिनांकित 15 अप्रैल 1958 से उत्पन्न अपील।

अपीलकर्ताओं की ओर से बी. आर.एल. अयंगर।

एम. सी. सीतलवाड, भारत के अटॉर्नी जनरल, एस. आर. वकील, के. एच. भाभा, जे. बी. दादाचंजी, ओ. सी. माथुर और रवींद्र नारायण, प्रतिवादी के लिए।

1962, 12 अप्रैल.

न्यायालय का निर्णय एस. के. दास, जे. द्वारा सुनाया गया।

यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 110 के तहत बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र पर एक अपील है, और एक मुकदमे से उत्पन्न होती है जो अपीलकर्ताओं ने मीर नवाब हिमायतअली खान आज़मजाह, जो हैदराबाद के निज़ाम के सबसे बड़े बेटे होने के नाते बरार के राजकुमार के रूप में जाने जाते थे, से ब्याज और लागत के साथ 9,99,940/- रुपये की वसूली के लिए दायर किया था। जिन परिस्थितियों में अपील उठी है, वो ये हैं।

31 जनवरी 1937 को या उसके आसपास बाबू मल एंड कंपनी ने बम्बई में बरार के राजकुमार को आभूषणों की विभिन्न वस्तुएँ जिनका कुल मूल्य रु. 13,20,750/- था बेची और सौंप दी। लाला कपूरचंद गोधा, जो कार्यवाही में प्रथम वादी थे एवं लाला हीरालाल गोधा जो मूल दूसरा वादी था, अपने पिता और एक लाला बाबू मल (अब

मृत) के साथ साझेदारी में आभूषणों का व्यवसाय बाबू मल एंड कंपनी के नाम और शैली में करता था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता जो अब हमारे सामने हैं मुकदमे की विषय-वस्तु में संपूर्ण रुचि रखते हैं और बाबू मुल एंड कंपनी के नाम का उपयोग करने के बजाय हम अपीलकर्ता को उन व्यक्तियों के रूप में नामित करेंगे जिन्होनें बरार के राजकुमार को 31 जनवरी 1937 को आभूषण बेचे थे। एक लेखन दिनांकित 31 जनवरी, 1937 बरार के राजकुमार द्वारा निष्पादित किया गया, जो हमारे समक्ष प्रतिवादी है, जिसके द्वारा उन्होनें एक अनुसूची में निर्दिष्ट आभूषण की अपीलकर्ताओं से क्रय घोषित और स्वीकृत किया जिसकी कुल कीमत रुपए 13,20,750/- है। उस लेखन (प्रदर्श ए) में प्रतिवादी ने कहा:

> "मैं अपने और अपने उत्तराधिकारियों, निष्पादकों, प्रशासकों और उत्तराधिकारियों की ओर से आपको या आपके आदेश को मेरे विकल्प और फुरसत में आपके उपर्युक्त पते पर तेरह लाख बीस हजार और सात सौ पचास रुपए मात्र की कथित धनराशि और उस पर 10% दस फीसदी प्रतिवर्ष की दर से साधारण ब्याज के भुगतान का वादा करता हूं।"

यह विवादित नहीं है कि आभूषण वास्तव में अपीलकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी को सुपुर्द किए गए थे, और 31 जनवरी 1937 के बाद, प्रतिवादी ने संबंधित स्वीकृतियां पारित करते समय उस समय देय ऋण के संबंध में विभिन्न स्वीकृतियाँ पारित कीं। इन दस्तावेज़ों में एक दायित्व की स्वीकृति शामिल थी और प्रतिवादी की ओर से भुगतान करने का वादा और ऐसी स्वीकृतियों में से अंतिम 15/16 फरवरी, 1948 को पारित हुई थी। उस समय तक जो 13,20,750/- रुपये का कर्ज था वो उस पर दस फीसदी ब्याज के साथ लगभग रु 27,79,000/- तक बढ़ गया था। उस अंतिम

दस्तावेज़ के द्वारा प्रतिवादी ने रुपये 27,79,078-2-0 की राशि के लिए अपना दायित्व स्वीकार किया और राशि का भुगतान, फिर से अपने विकल्प और इत्मीनान के साथ देने का वादा किया। 30 अप्रैल, 1948 को, अपीलकर्ताओं ने अपना बिल प्रस्तुत किया, जनवरी 1949 में किसी समय अपीलकर्ताओं में से एक का प्रतिवादी के साथ एक साक्षात्कार हुआ और उसको बताया गया कि निज़ाम ने बिल पास कर दिया है। 1949 में जब पुलिस कारवाई के बाद हैदराबाद पर सैन्य कब्ज़ा हो गया, 8 फरवरी 1949 को सैन्य गवर्नर द्वारा एक समिति गठित की गई थी जिसे प्रिंसेस ऋण निपटान समिति के रूप में जाना जाता है। इस समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि इसे बरार के राजकुमार और उसका छोटे भाई के सभी ऋणों की जांच करने के लिए सैन्य गवर्नर द्वारा द्वारा किए गए एक संकल्प के अनुसार स्थापित किया गया। 19 फ़रवरी 1949 को अपीलकर्ताओं ने सैन्य गवर्नर को उनके दावे के संबंध में एक याचिका प्रस्तुत की और उनकी बकाया राशि के भुगतान या विकल्प के रूप में आभूषण वापस करने के लिए कहा। अपीलकर्ताओं के दावे पर समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट के पैरा 11 में विचार किया गया। समिति ने अनुशंसा की कि अपीलकर्ताओं को उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि हेतु 20 लाख रु की राशि का भुगतान किया जाना चाहिए। समिति ने आगे कहा कि उन्होंने आभूषण वापस करने की अनुशंसा नहीं करी। यहाँ यह कहा जा सकता है कहा गया कि समिति में दो व्यक्ति शामिल थे, अर्थात्, ज़हेरुद्दीन अहमद, जो निज़ाम के लेखा नियंत्रक थे और भारतीय सिविल सेवा के सदस्य ए.एन. शाह। यह भी कहा जा सकता है कि समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि दोनों राजकुमारों को माल के सभी आपूर्तिकर्ताओं के मामले में लगभग दस प्रतिशत की कटौती की गई क्योंकि समिति ने सोचा कि अधिकांश मामलों में आपूर्तिकर्ता दोनों राजकुमारों को की जाने वाली माल की आपूर्ति के लिए कीमत बढ़ा देते थे। समिति ने यह भी सोचा कि ऐसे मामलों में जिनमें लेनदारों को भुगतान के लिए कई वर्षों तक इंतजार करना पड़ता था ब्याज की

उचित दर छह प्रतिशत होगी। 27 सितम्बर 1949 को अपीलकर्ताओं को रु 11,25,000/- का भुगतान किया गया। उस समय वहां इस बात पर विवाद चल रहा था कि क्या अपीलकर्ता 20 लाख रुपये की पूरी राशि का हकदार थे या केवल 9/16 वें हिस्से के। वह विवाद अंततः अपीलार्थी के पक्ष में समाप्त होने से - अपीलर्थियों को 14 फरवरी 1950 को 8,75,000/- रुपये का दूसरा भुगतान प्राप्त हुआ। इस राशि के साथ-साथ पहले की राशि का अपीलकर्ताओं को किया गया भुगतान कुल 20 लाख रुपये था, जो समिति ने सिफारिश की थी कि उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि में अपीलकर्ताओं को भुगतान किया जाना चाहिए। 14 फ़रवरी 1950 को, रु.8,75,000/(एक्स. सी) की राशि के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा एक रसीद पारित की गई थी और यह रसीद निम्नलिखित शर्तों में थी:

> "बरार के राजकुमार द्वारा मेरे पक्ष में पारित वचन पत्र दिनांकित 15 फरवरी 1948 के तहत मेरे दावे के संबंध में सरकार द्वारा अनुमत बकाया बीस लाख रुपये के पूर्ण और अंतिम भुगतान के रूप में लेखा एवं लेखापरीक्षा महानियंत्रक, हैदराबाद सरकार, से कुल रु. 8,75,000/- (रु. आठ लाख पचहत्तर हजार) केवल प्राप्त किए, हालांकि बरार के राजकुमार के उक्त वचनपत्र के तहत मुझे देय शेष राशि का बकाया वसूल करने का मेरा अधिकार सुरक्षित है।"

हालाँकि, संबंधित अधिकारियों ने रसीद एक्स.सी पर भुगतान करने से इनकार कर दिया जिसमें अपीलकर्ताओं का बरार के राजकुमार से अपना बकाया राशि वसूल करने का अधिकार सुरक्षित था। इसके बाद, अपीलकर्ताओं ने पिछले सभी वचन पत्रों को डिस्चार्ज कर दिया और उनमें से प्रत्येक पर भुगतान की पूर्ण संतुष्टि दर्ज की। हम उनमें से अंतिम का उल्लेख कर सकते हैं, अर्थात्, दिनांक 15/16 फरवरी, 1948 वाले

का। यह 27,79,078-2-0 रुपये की राशि के लिए था और इस दस्तावेज़ पर अपीलकर्ताओं में से एक करपुरचंद गोधा ने दर्ज किया "पूर्ण भुगतान प्राप्त किया"।

फिर, 14 अगस्त, 1950 को अपीलकर्ताओं ने उनके वकील के माध्यम से प्रतिवादी को एक नोटिस भेजकर दस फीसदी ब्याज सहित उससे रु.9,99,940/- का भुगतान करने को कहा। प्रतिवादी द्वारा राशि का भुगतान नहीं करने से, राशि की वसूली के लिए 5 फरवरी, 1951 को बम्बई उच्च न्यायालय में एक मुकदमा दायर किया गया था।

मुकदमे की सुनवाई कोयाजी, जे. द्वारा की गई थी। विचारण के लिए मुख्य मुद्दा, मुद्दा संख्या 6 था, अर्थात् क्या अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादी के खिलाफ अपने दावे की पूर्ण संतुष्टि में रुपए 20 लाख का भुगतान स्वीकार किया था, और सभी लेखन को विधिवत डिस्चार्ज किया गया और जैसा कि लिखित- कथन के पैरा 7, 8 और 11 में उल्लिखित है ऋण से पूर्णतः मुक्ति मिल गई। मामले में दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के विचार पर और विशेष रूप से एक्स. सी पर भरोसा करते हुए, कोयाजी, जे. इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ताओं ने अपने दावे की पूर्ण संतुष्टि में 20 लाख रुपये की रकम नहीं ली। विद्वान न्यायाधीश ने कहा:

> "उन दस्तावेजों अर्थात (एक्स.सं.1 पूर्ण संतुष्टि में भुगतान) की पुष्टि करने के बाद साधारणतया, एक वादी अपने दावे को लागू करने के लिए सबसे कठिन और अवांछनीय स्थिति में होगा। लेकिन जाहिर तौर पर "पूर्ण संतुष्टि में भुगतान)" वहाँ पूर्ण संतुष्टि का मतलब था हैदराबाद राज्य के दायित्व के संबंध में और यदि एक्स सी के साथ संयोजन में लिया जाये तो स्वाभाविक रूप से यही अर्थ होगा, जहां उसने अपने पास व्यक्तिगत रूप से बरार के राजकुमार के खिलाफ

कार्यवाही करने की स्वतंत्रता सुरक्षित रखी। इसलिए मैं मुकदमे के मुख्य मुद्दे पर निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ, अर्थात्, वादी को हैदराबाद राज्य के महालेखाकार से दूसरा चेक प्राप्त होने पर कोई सहमति और संतुष्टि नहीं थी."

फिर प्रतिवादी की ओर से एक अपील की गई जिस पर अपीलीय अदालत (चागला, सी.जे. और मोदी, जे.) द्वारा सुनवाई की गई। अपने 15 अप्रैल 1958 के निर्णय द्वारा अपीलीय अदालत विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचा, और यह माना गया कि मामले में दिये गए मौखिक और पर दस्तावेज़ी साक्ष्य के आधार पर यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि अपीलकर्ताओं ने उनके दावे की संतुष्टि में 20 लाख रुपये की राशि स्वीकार की और पूर्ण संतुष्टि की पुष्टि करते हुए वचन पत्रों को विधिवत डिस्चार्ज कर दिया। इसलिए, भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 63 लागू होती है और अपीलकर्ताओं का मुकदमा खारिज किये जाने योग्य था। इसने तदनुसार अपील की अनुमति दी और मुकदमें को हर्ज़े-ख़र्चे के साथ खारिज कर दिया।

हमारे समक्ष अपील में अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री बी. आर. एल. अयंगर ने बहुत दृढ़ता से यह तर्क दिया गया है कोयाजी, जे. का दृष्टिकोण मामले में दिये गए साक्ष्य पर सही दृष्टिकोण है। उन्होंने उस संबंध में दो बिंदुओं पर जोर दिया है: (1) महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि- 20 लाख रुपये स्वीकार करने में ऋणदाता का क्या इरादा था, इस बारे में साक्ष्य क्या दिखाता है? और (2) रसीद एक्स सी जो रुपये 8,75,000 की दूसरी किस्त के भुगतान के समसामयिक रूप से निष्पादित की गई थी, का प्रभाव क्या है? श्री अयंगर ने तर्क दिया कि अपीलीय अदालत ने इन दोनों बिन्दुओं को पर्याप्त महत्व नहीं दिया और जिस निष्कर्ष पर यह पहुंची है वह दूषित है। जैसा कि अपीलीय अदालत का निर्णय उलटा निर्णय है और उठाया गए प्रश्न अनिवार्य रूप से

तथ्यात्मक प्रश्न हैं जिन पर विरोधाभासी निष्कर्ष हैं, हमने पक्षकारों के वकील को हमारे समक्ष प्रासंगिक साक्ष्य के साथ पक्षकारों की दलीलें रखने की अनुमति दी। जिन दो गवाहों की गवाही उठाए गए सवालों पर निर्णायक प्रतीत होती है, उनमें पुट्टा माधव राव जिनकी अपीलकर्ताओं की ओर से जांच की गई, और कपूरचंद गोधा अपीलकर्ताओं में से एक। प्रासंगिक समय में पुट्टा माधव राव हैदराबाद के सहायक महालेखाकार थे, और वह एक से अधिक बार समिति के समक्ष उपस्थित थे जब अपीलकर्ताओं के दावे पर विचार किया गया। कोयाजी, जे. के समक्ष एक सवाल उठाया गया था कि समिति के समक्ष क्या हुआ था उस पर क्या इस गवाह के बयान साक्ष्य में स्वीकार्य थे, जब समिति के दोनों सदस्यों में किसी को जांच के लिए नहीं बुलाया गया। माधव राव निस्संदेह जो उन्होनें स्वयं सुना या देखा उसको साबित करने में सक्षम थे, अगर सुनना और देखना कोई तथ्य था, और हम आगे के इस सवाल को निर्धारित करना अनावश्यक मानते हैं कि क्या वह समिति के दोनों सदस्यों में से किसी एक या दूसरे के द्वारा दिये गए कथित बयान को साबित करने में सक्षम था। इसलिए, हम खुद को माधव राव के उन बयानों तक सीमित रखते हैं की उनके समक्ष क्या हुआ। माधव राव ने कहा कि समिति के समक्ष अपीलकर्ताओं ने को उनका पूरा भुगतान करने पर जोर दिया दावा करें, लेकिन समिति ने निर्णय लिया कि अपीलकर्ताओं को उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि में 20 लाख रुपए अवश्य लेने चाहिए; पर इसका कपूरचंद गोधा ने विरोध किया और कहा कि उन्हें शेष राशि पर अपना अधिकार सुरक्षित रखना होगा। समिति ने इसके बाद यह स्पष्ट किया कि वे इससे अधिक भुगतान की अनुशंसा नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें वितरण के लिए एक विशिष्ट राशि आवंटित कर दिया गया था। "एक विशिष्ट राशि" का संदर्भ उस दो करोड़ रुपये की राशि के लिए था जो सर्फ-ए-खान नाम की निधि से दो 'राजकुमारों' के ऋणों का परिसमापन करने के लिए निर्धारित थी। समिति द्वारा अनुशंसा करने के बाद क्या हुआ, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। रुपये 11,25,000/- की पहली किश्त

का भुगतान 27 सितम्बर 1949 को किया गया। उस समय पैसे की हिस्सेदारी को लेकर अपीलकर्ताओं में विवाद चल रहा था। रुपये 11,25,000/- के भुगतान के लिए जिस रसीद को पारित किया गया था उस पर एक्स बी अंकित किया गया। रसीद से यह नहीं पता चलता कि क्या अपीलकर्ता उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि में 20 लाख रुपए लेने के लिए सहमत थे। रु. 8,75,000/- की दूसरी किस्त के संबंध में जिसका भुगतान 14 फ़रवरी 1950 को किया गया, माधव राव ने निम्नलिखित साक्ष्य दिये। उन्होंने कहा कि जब एक्स सी कपूरचंद गोधा द्वारा उनके पास लाई गई, गवाह ने गोधा को कहा कि वह उस रसीद के विरुद्ध भुगतान नहीं कर सका, जैसा कि रसीद में बताया गया है, शेष राशि के लिए अपीलकर्ताओं के अधिकार सुरक्षित। गवाह दस्तावेज़ एक्स सी को जहीरुद्दीन अहमद जो उस समय महालेखाकार थे के पास लेकर गया। जहीरुद्दीन अहमद ने सुझाव दिया कि दावेदार को पूर्ण संतुष्टि की पुष्टि करनी चाहिए और सभी वचन पत्रों का भुगतान और उसके बाद ही भुगतान किया जाएगा. तब साक्षी ने कहा:

> "इसके बाद मुझे कपूरचंद से ये पुष्टियाँ (वचन पत्रों पर) प्राप्त हुई। कपूरचंद इन दस्तावेजों की पुष्टि करते हुए विरोध जताया कि उन्हें पुष्टि करने के लिए मजबूर किया गया था और वह बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं था। यह 14 फ़रवरी 1950 को हुआ."

हम यहां बता सकते हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा कोई याचिका नहीं की गई थी इस आशय से कि वचन पत्रों पर पुष्टि ज़बरदस्ती प्राप्त की गई था, और

वचन पत्रों पर पुष्टि ज़बरदस्ती लिए जाने बाबत पक्षकारों के बीच कोई मुद्दा नहीं बना। यह स्थिति होने के नाते, माधव राव की साक्ष्य का क्या प्रभाव है? स्पष्ट प्रभाव यह है कि अधिकारी जो प्रतिवादी के कर्ज को उन्मुक्त करने के लिए पैसे दे रहे थे उन्होनें यह स्पष्ट कर दिया कि वे पैसे का भुगतान तब ही करेंगे यदि अपीलकर्ताओं द्वारा दावे की

पूर्ण संतुष्टि दी जाती है। कुछ शुरुआती विरोध के बाद अपीलकर्ता सहमत हुए और पूर्ण भुगतान और संतुष्टि की पुष्टि करते हुए सभी वचन पत्रों को विधिवत उन्मुक्त किया। ज़बरदस्ती का सवाल उत्तर-चिंतन के बाद पेश किया गया। माधव राव के साक्ष्य से दो तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित होते प्रतीत होते हैं। एक तो अधिकारियों ने समिति की सिफ़ारिश के अनुसार दावे की पूर्ण संतुष्टि की पुष्टि होने तक दूसरी किस्त देने से इंकार कर दिया; दूसरा यह है कि अपीलकर्ताओं ने उनको पैसा मिलने से पहले वचन पत्रों की संतुष्टि में पूर्ण भुगतान दर्ज किया। हमार राय में, इन दो तथ्यों ने स्पष्ट रूप से प्रतिवादी के वाद को स्थापित किया की ने कहा कि दूसरी किस्त मिलने अपीलकर्ताओं ने पूर्ण डिस्चार्ज दिया था। वास्तव में, माधव राव की साक्ष्य को कपूरचंद गोधा की साक्ष्य से समर्थन मिलता है। कपूरचंद गोधा ने कहा कि जब उसने रसीद एक्स सी माधव राव को प्रस्तुत की तो राव ने कहा कि वह उस रूप में रसीद स्वीकार नहीं करेंगे। इसके बाद माधव राव कपूरचंद को महालेखाकार के पास ले गए। कपूरचंद को वचन पत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था और वह था बताया कि जब तक वचन पत्रों का पूर्ण संतुष्टि से पुष्टि नहीं हो जाती, कोई भुगतान नहीं किया जाएगा। कपूरचंद ने तब कहा:

> "मुझे बताया गया कि जब तक मैं पूर्ण भुगतान की रसीद पर हस्ताक्षर नहीं करता, तब तक कोई चेक जारी नहीं किया जाएगा। इसके बाद मैंने पूर्ण भुगतान की रसीद की पुष्टि कर दी। इससे मेरा मतलब है कि मुझे वाउचर पर पूर्ण भुगतान की पुष्टि के लिए कहा गया और मैंने वैसा कर दिया। मैंने विरोध किया और कहा कि मुझे पूर्ण भुगतान कि पुष्टि के लिए कहा गया, मैं ऐसा कर रहा था, इस तथ्य के बावजूद कि मुझे पूर्ण भुगतान प्राप्त नहीं हो रहा था । इसके

बाद मैंने वाउचर के रूप में रसीद पर हस्ताक्षर कर दिये और दस्तावेज़ महालेखाकार को सौंप दिये"

यह साक्ष्य माधव राव के साक्ष्य के अनुरूप है और यह पुनः स्थापित करता है कि अपीलकर्ताओं को जब रुपये 8,75,000/- की दूसरी और आखिरी किस्त प्राप्त हुई उन्होनें उनके दावे का पूर्ण डिस्चार्ज दे दिया और जबरदस्ती की दलील उतर-चिंतन के रूप में बाद में प्रस्तुत की गई। इस बात को लेकर साक्ष्यों में कुछ अंतर था कि क्या एक्स सी को पहली बार माधव राव को प्रस्तुत किया गया तो क्या उस पर कपूरचंद के हस्ताक्षर थे, या बाद में इस पर हस्ताक्षर किए गए थे। उस अंतर से अब हमें कोई सरोकार नहीं है। न ही हमें ऊपर संदर्भित दो गवाहों की गवाही में कुछ छोटी-मोटी विसंगतियों से सरोकार है। दो गवाहों जिन्हें हमने संदर्भित किया है की गवाही का महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि अपीलकर्ताओं के दावे की संतुष्टि में कपूरचंद को 20 लाख रुपये स्वीकार करने में जो भी अनिच्छा हुई हो, वो अंततः ऐसा करने के लिए सहमत हुए। ना केवल वह सहमत हुआ, बल्कि उसने वास्तव में सभी वचनपत्रों पर पूर्ण संतुष्टि और भुगतान कि पुष्टि कि, और उसके बाद उसने रुपए 8,75,000/ की दूसरी किश्त प्राप्त की जो 11,25,000/- रूपये की पहली किश्त के साथ 20 लाख रूपये की राशि बनी। इन तथ्यों पर जो स्वयं अपीलकर्ताओं की ओर से दिए गए साक्ष्यों से स्थापित होते हैं, एकमात्र निष्कर्ष यह है कि अपीलकर्ताओं के दावे की पूरी संतुष्टि थी।

कानूनी स्थिति काफी स्पष्ट है। भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 63 कहती है:

"हर वचनगृहीता उसको दिये गए वचन के पालन को, पूर्णतः या आंशिक रूप से, छोड़ या त्याग सकता है, का निष्पादन उससे किया

> गया वादा, या ऐसे पालन का समय बढ़ा सकता है, या इसके बदले कोई ऐसे संतुष्टि ले सकता है जो उसे उचित लगे।"

अनुभाग का दृष्टांत (सी) कहता है:

> "ए पर बी का 5000 रुपए बकाया है। C, B को 1000 रुपये का भुगतान करता है, और बी उन्हें ए पर उसके दावे की संतुष्टि में स्वीकार करता है। यह भुगतान पूरे दावे का डिस्चार्ज है।"

हमें ऐसा लगता है कि यह मामला पूरी तरह धारा 63 और उसके दृष्टांत (सी) से संबन्धित है। अपीलकर्ताओं द्वारा उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि में भुगतान स्वीकार किया जाने से वो अब शेष राशि के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा करने के हकदार नहीं है। इस संबंध में अनुबंध अधिनियम की धारा 41 का संदर्भ भी दिया जा सकता है जिसके तहत जब कोई वचनगृहीता तीसरे व्यक्ति से वादा पालन को स्वीकार करता है, वो बाद में इसे वादा करने वाले के विरुद्ध लागू नहीं कर सकता। वहाँ कुछ इस आशय का अंग्रेजी प्राधिकार है कि एक अनुबंध का किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा समापन तभी प्रभावी होता है जब वह कर्ज़दार द्वारा प्राधिकृत या अनुसमर्थित होता है । हालांकि, भारत में अनुबंध अधिनियम की धारा 41 के शब्द संदेह के लिए कोई जगह नहीं छोडते है, और जब अपीलकर्ताओं ने तीसरे व्यक्ति से वादे के निष्पादन को स्वीकार कर लिया है, वे बाद में इसे वादा करनेवाला, अर्थात्, प्रतिवादी के विरुद्ध लागू नहीं कर सकते।

जब कोई क़ानून किसी मामले पर स्पष्ट रूप से लागू होता है, तो निर्णयों को संदर्भित करना शायद ही आवश्यक हो। तथापि, अपीलकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्कों के सम्मान में, हम दो निर्णयों उल्लेख करते हैं जिन पर अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है। इनमें से एक है डे बनाम मैक ली (1899-32 क्यू.बी.डी.610-613) में दिये गए निर्णय का है। उस मामले में वादी ने प्रतिवादियों के खिलाफ दावा किया

था अनुबंध के उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में धनराशि के लिए; प्रतिवादियों ने यह कहते हुए कम राशि का चेक भेजा सभी मांगों के लिए पूर्ण भुगतान है। वादी पक्ष ने यह बताते हुए चेक रखा कि उन्होनें खाते पर ऐसा किया और बकाया राशि के दावे के लिए कार्यवाही शुरू कर दी। यह माना गया कि चेक को रखना, कानूनी तौर पर इस का निर्णायक नहीं था दावे के लिए सहमति और संतुष्टि थी; लेकिन यह एक तथ्य का प्रश्न था कि चेक किन शर्तों पर रखा गया था। हमें नहीं लगता कि उस निर्णय से अपीलकर्ता को किसी प्रकार की मदद मिलेगी जैसा कि लॉर्ड जस्टिस बोवेन ने डे बनाम मैक ली (1899-32 क्यू.बी.डी.610-613) में कहा था:

> "यदि कोई व्यक्ति इन शर्तों पर धनराशि भेजता है कि इसे, यदि इसे लिया भी जाना है- एक बड़े दावे की संतुष्टि में; और अगर पैसा रखा गया है, यह तथ्य का प्रश्न है जिन शर्तों पर इसे रखा गया है। सहमति और संतुष्टि का तात्पर्य उस समझौते से है जिसमें उस दावे की संतुष्टि में पैसा लेने से है, जिस संदर्भ में इसे भेजा गया है। यदि समझौता एक सहमति प्रश्न है, या तो दो दिमाग होने चाहिए सहमत होने के लिए, या दो व्यक्तियों में से एक इस तरह से व्यवहार करे कि दूसरे को यह सोचने के लिए प्रेरित किया जा सके कि पैसा दावे की संतुष्टि में लिया गया है, और उसे उस दृष्टिकोण पर कार्य करने के लिए प्रेरित करें।
>
> किसी भी मामले में यह तथ्य का प्रश्न है।"

हम पहले ही उन तथ्यों का उल्लेख कर चुके हैं जो इस मामले में साक्ष्यों द्वारा स्पष्ट रूप से स्थापित किए गए हैं। वो तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि अपीलकर्ताओं ने दूसरी किस्त को उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि में लिया। दूसरा निर्णय जिस पर

अपीलकर्ताओं की ओर से पर भरोसा किया गया न्यूचैटेल एस्फाल्टे कंपनी लिमिटेड बनाम बार्नेट (1957 1 सभी आर.आर. 362.) का भी इसी तरह का आधार है। उस मामले में वादी कंपनी का दावा राशि 259 पाउंड थी, लेकिन प्रतिवादी ने कुछ मामूली प्रश्न उठाए जो इसे 14 या 15 पाउंड तक कम कर सकता है। इसके बाद प्रतिवादी ने 125 पाउंड का चेक भेजा और कवरिंग लेटर में कहा कि यह राशि किए गए कार्य के संबंध में बकाया प्रश्नों के वादी के जवाब की लंबित प्राप्ति "खाते पर " है। वादी कंपनी द्वारा चेक स्वीकार कर लिया गया, जिसने बाद में दावे की राशि के बकाया के लिए मुकदमा कर दिया। कुछ समय बाद प्रतिवादी ने 75 पाउंड का एक और चेक संलग्न किया और चेक के पीछे यह पुष्टि थी, "खाते के पूर्ण एवं अंतिम निपटान में।" चेक वादी कंपनी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, जिसने बाद में दावे की शेष राशि के लिए मुकदमा दायर किया। यह माना गया कि पत्राचार और आस-पास की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, वादी कंपनी का कोई इरादा नहीं था की वादी के दावे की पूर्ण संतुष्टि में 75 पाउंड के लिए चेक स्वीकार करे, क्योंकि चेक के पीछे टाइप किए गए शब्द "खाते के पूर्ण एवं अंतिम निपटान में" मुख्य उद्देश्य और लेन-देन का के इरादे से असंगत था, विशेषकर चूंकि (ए) प्रतिवादियों द्वारा भेजा गया कवरिंग पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया कि चेक केवल 'खाते पर' में भेजा गया था और पूर्ण और अंतिम निपटान में नहीं, और (बी) ऐसा यथोचित रूप से नहीं माना जाना जा सकता, कि उन परिस्थितियों में, वादी कंपनी दावा कि गई राशि में कटौती के लिए सहमत हो गई थी। हमारे सामने मामले के तथ्य पूरी तरह अलग हैं। अपीलकर्ताओं को स्पष्ट रूप से थे बताया कि जब तक वे अपने दावे कि पूरी संतुष्टि नहीं दे देते, उन्हें राशि का भुगतान नहीं किया जाएगा। अपीलकर्ता उस शर्त को लेकर किसी संशय में नहीं थे जिस पर उनको भुगतान किया जाएगा। अपीलकर्ताओं ने इसे स्पष्ट रूप से शर्त को स्वीकार कर लिया और सभी वचन पत्रों पर पूर्ण संतुष्टि दर्ज की गई। अब इस स्थिति को स्वीकार

करना असंभव है कि अपीलकर्ताओं ने शेष राशि के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा करने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा है। हीराचंद पुनम चंद बनाम टेम्पल (1911-2 के.बी. 330।) में एक देनदार के पिता ने ऋण के पूर्ण निपटान के लिए ऋण की तुलना में कम राशि की पेशकश करते हुए लेनदार को लिखा, और उस राशि के लिए एक ड्राफ्ट संलग्न किया। लेनदार ने ड्राफ्ट को अपने पास रखा और आय को भुनाया और बाद में ऋण की शेष राशि के लिए देनदार के खिलाफ कार्रवाई की। यह माना गया कि यह माना जाना चाहिए कि लेनदार द्वारा प्राप्त राशि उन शर्तों पर स्वीकार की गई पर जिन पर यह पेशकश की गई थी और इसलिए वह कार्रवाई अनुरक्षणीय नहीं है। मामले पर अंग्रेजी कानून के तहत विचार किया गया और यह देखा गया कि यह मानते हुए कि इंग्लैंड में कानून के सख्त अर्थों में कोई सहमति और संतुष्टि नहीं थी, यह अभी भी माना जा सकता है कि ऋणदाता वास्तव में उस परक्राम्य लिखत का धारक नहीं था जिसके आधार पर उसने मुकदमा किया था। मामले में अंग्रेजी कानून की बारीकियों के साथ सहमति और संतुष्टि से हमें कोई सरोकार नहीं है। वर्तमान मामले में स्थिति यह है कि अपीलकर्ताओं को अवश्य पता होगा ताकि वे दूसरी किस्त प्राप्त कर सकते हैं और उस शर्त को स्वीकार करते हुए अपने पास प्रथम किस्त को रख सकते हैं, जिस पर उनको 20 लाख रुपये की राशि कि पेशकश की गई थी, यानी कि वो उनके दावे की पूर्ण संतुष्टि दर्ज करें। उन्होंने पैसा उस पर शर्त स्वीकार कर लिया यह है जिस पर इसे पेश किया गया था और यह कहने के लिए अब उनके लिए खुला नहीं हैं, वास्तव में या कानून में, कि उन्होंने पैसे तो स्वीकार कर लिया लेकिन शर्त स्वीकार नहीं की।

इन कारणों से हम संतुष्ट हैं कि अपीलीय अदालत उस दृष्टिकोण में सही थी जो उसने लिया। इसलिए, इस प्रकार अपील- विफल रहती है और हर्जे-ख़र्चे के साथ खारिज कर दी जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक अशोक कुमार मीना द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।